मृदा प्रबंधन के व्यवहार

दिलीप चौधरी [1], सुरज्ञान रुण्डला [2] एवं राधा किशन चौधरी [3]
[1] शोध छात्र, सस्य विज्ञान विभाग, नैनी एग्रीकल्चर इंस्टीट्यूट, परयागराज, उत्तरप्रदेश
[2,3] शोधछात्रा, सस्यविज्ञान विभाग, कृषि महाविद्यालय,
चौधरी चरण सिंह हरियाणा एग्रीकल्चर यूनिवर्सिटी, हिसार
Email Id:dilipbkn1997@gmail.com

मृदा प्रबंधनः

मृदा प्रबंधन मिट्टी की रक्षा और उसके प्रदर्शन (जैसे मिट्टी की उर्वरता या मिट्टी यांत्रिकी) को बढ़ाने के लिए संचालन, प्रथ. ाओं और उपचारों का अनुप्रयोग है। इसमें मृदा संरक्षण, मृदा संशोधन और इष्टतम मृदा स्वास्थ्य शामिल हैं।

कृषि में, कृषि भूमि को दशकों से खराब उत्पादक बनने से रोकने के लिए अकार्बनिक और जैविक दोनों प्रकारों में कुछ मात्रा में मिट्टी प्रबंधन की आवश्यकता होती है।

जैविक खेती विशेष रूप से इष्टतम मिट्टी प्रबंधन पर जोर देती है, क्योंकि यह मिट्टी के स्वास्थ्य का उपयोग इसके निषेचन और कीट नियंत्रण के अन्य या लगभग अन्य स्रोत के रूप में करती है। मृदा कार्बन में वृद्धि करके और साथ ही आधुनिक औद्योगिक कृषि पद्धतियों से जुड़े अन्य प्रमुख पर्यावरणीय मुद्दों को संबोधित करके जलवायु परिवर्तन को संबोधित करने के लिए मृदा प्रबंधन एक महत्वपूर्ण उपकरण है तथा विभिन्न विधियों से मृदा का प्रबंधन किया जा सकता है।

भौगोलिक क्षेत्र का चुनावः

अच्छे फसल उत्पादन के लिए भौगोलिक क्षेत्रों का चयन फसल की प्रकृति पर निर्भर करता है। इस फसल के लिए इष्टतम तापमान, जलवायु और उपजाऊ मिट्टी की आवश्यकता होती है। यह जलवायु फसल और रोगजनक दोनों के लिए अनुकूल हो सकता है। अनेक कवक व जीवाणु उत्पन्न होते हैं और तीव्र गती से वृद्धि करते है। अतः वहाँ की मृदा अधिक रोगाणुजनित हो सकती है। इसलिए भौगोलिक क्षेत्र न ज्यादा गर्म न ज्यादा आर्द्र हो।

खेत का चयनः

एक फसल की सफल खेती, एक उचित खेत के चयन पर बहुत निर्भर करती हैं। यदि एक मृदाजनित रोगजनक द्वारा उत्पन्न रोग खेत मे स्थापित हो गया है, तो उस फसल को कुछ वर्षों के लिए नहीं उगाया जाता है। कुछ रोग जैसे आलू की जीवाणु जग्लानि (रैल्स्टोनिया सोलेनेसियेरम), गेहूँ का सेंहूँ (ऐग्विनाट्रिटिसाई) इत्यादि में खेत का परि. रवर्जन किया जा सकता हैं। यदि फसल कटने के बाद दोबारा उसी खेत में गन्ना बोया जाता है, तब रोग के उग्रता से उत्पन्न होने के अधिक अवसर बढ़ जाते हैं क्योंकि रोगजनक मृदा में कुछ महीनों के लिए उत्तरजीवी रह जाते है जो दूसरी फसल को नुकसान पहुंचाते है। इसी प्रकार खेतों के जल निकास भी अनेक रोगों की तीव्रता से बढा देता है।

मिट्टी का चयनः

जब मिट्टी का चयन किया जाता है तो मिट्टी उपजाऊ होती है और इसमें उच्च मात्रा में पोषक तत्व मौजूद होते हैं। फसल उत्पादन के लिए काली मिट्टी का चयन किया जाता है। इस मिट्टी में उच्च जल धारण क्षमता और उच्च कार्बनिक पदार्थ इस मिट्टी में मौजूद हैं।

मिट्टी का उपचारः

मृदा उपचार का मुख्य उद्देश्य मृदा में उपस्थित रोगजनक को निष्क्रिय करना अथवा उनका अन्मूलन करना है। इसके लिए विभिन्न रसायन, उष्मा, कर्षण क्रियाऐ जैसे बाढ एवं परती आदि विधियो का प्रयोग किया जाता है। मृदा के रासायनिक उपचार में साधारणतः कवकनाशी एवं

सूत्रकृमि प्रयोग किये जाते है। मृदा धूमक, कवकनाशी और धूल का प्रयोग फसल के प्रतिरोपण के समय किया जाता है तथा प्रयोग में आने वाले अधिकांश कवकनाशी क्रिया में केवल विशिष्ट कवकों को नष्ट करते है।

सूत्रकृमि व कवकनाशी मृदा में उपस्थित लाभदायक सूक्ष्मजीवों को तथा जीवाणुओ को नष्ट कर देते है। खेत में अधिक मात्रा में पानी भरने से मृदा में आक्सीजन की कमी हो जाती है जिससे जीवाणु व कवक आदि मर जाते है। इसके अतिरिक्त अनेक कवक रोगजनक की सुप्त संरचनाएँ भी जल की सतह पर तैरने लगती है। यदि खेत के जल का निकास तुरंत कर दिया जाए तो ये संरचनाएँ भी खेत से बाहर बह जाती है। कृषि के प्रारम्भिक काल से ही मृदा में सूक्ष्मपोषक तत्वों को बनाये रखने के लिए किसानों द्वारा भूमि का परती की प्रथा चली आ रही थी। इस विधि से मृदा में अनेक मृदा जनित रोगजनक के स्तर को कम करने में बहुत सहायता मिलती है।

सफाई के उपायः

खेत की स्वच्छता भी अनेक मृदा जनित एवं परजीवी के उन्मूलन के लिए बहुत आवश्यक होती है। अनेक बायोट्रॉफ सभी मृदा में या उस के ऊपर पड़े रोगग्रस्त पादप अंगों में प्रसुप्त संरचनाओ द्वारा हमेशा बने रहते है। मट्टी में फसल के मलबे को मिट्टी पलटने वाले हल से अधिक गहराई में दबाने से भी अनेक रोगजनकों का रहना निष्क्रिय हो जाता है। यह सफाई उस समय बहुत आवश्यक होती है जब रोगग्रस्त फसल के अवशेषों को खेत में छोड़ दिया जाता है, जो दूसरी फसल को भी रोगग्रस्त कर देता है, क्योंकि रोगजनक मृदा में ही रह जाते हैं।

ऊष्मा द्वारा मृदा का निर्जमीकरणः

मिट्टी निर्जमीकरण छोटे क्षेत्रों के लिए अच्छा होता है। इसमें भाप द्वारा कीटाणु शोधन अथवा निर्जमीकरण करना एक पुरानी विधि है। उष्मनिर्जमीकरण द्वारा मृदा में उपस्थित मृदा जनित रोगजनक जैसे कवक, जीवाणु एवं सूत्रकृमि आदि तथा कीट एवं खरपतवार के बीजों को नष्ट कर दिया जाता है। सामान्य रूप से मृदा निर्जमीकरण के लिए वाष्पगर्मी, गर्म वायु के स्थान पर लाइवस्टीम के रूप में प्रयोग किया जाता है। भाप को पाइप के द्वारा मृदा में भेज कर किया जाता है। ये भाप मृदा में विसरित हो जाती है। प्रायः 50° सेल्सियस पर सभी कवक, जीवाणु एवं सूत्रकृमी, शैवाल के साथ–साथ कुछ कीड़े, मल, सेंटीपीड आदि सामान्य रूप से नष्ट हो जाते हैं। 82° सेल्सियस पर खरपतवारों के बीज पादप रोग जनक, जीवाणु एवं सूत्रकृमि आदि तथा कीट एवं विषाणु के आदि भी मर जाते हैं। 90° सेल्सियस से 100° सेल्सियस तापमान पर लगभग सभी रोगजनक मर जाते हैं। सामान्यतः मृदा का निर्जमीकरण उस समय पूर्ण हो जाता है, जब मृदा के सबसे शीतल भाग का तापमान कम से कम 30 मिनट के लिए 82° सेल्सियस या इससे थोड़ा ऊपर बना रहता है।

मृदा का निर्जमीकरण निम्न विधियों द्वारा किया जा सकता हैः

(1) अन्तर्निर्मित पटियाँ या पाइपः

मृदा तल के लगभग 30 सेमी० झरझरा निर्मित पाइप अनेक भाप जेट के साथ बिछाये जाते हैं। इन पाइपों में से भाप को दाब के साथ छोड़ा जाता है, जो छिद्रों में से निकलकर मृदा में विसरित होती है और उसका निर्जमीकरण करती है।

(2) वाष्प पात्र या प्रवाष्परेकः

अस्थाई स्थानों पर अलग से रोगजनक और सूत्रकृमीनाशक स्थानों की मृदा का निर्जमीकरण करने के लिए उल्टे वाष्पात्र या भाप रेक का उपयोग किया जाता है। ये पात्र वर्गाकार या आयताकार व जस्तेदार लोहे की चादर का बना होता है। जिसका खुला सिरा मृदा सतह के ऊपर पात्र के भीतर रहता है। भाप की पूर्ति एक थोड़े भार के वहनीय बॉयलर द्वारा की जाती है। भाप के दाब के द्वारा 20 से 60 मिनट तक छोड़ा जाता है, जिससे रोग जनक मर जाते है।

(3) दाब प्रवाष्पनिर्जेपात्रः

मृदा का निर्जमीकरण, दाब प्रवाष्पनिर्जेपात्र द्वारा किया जाता है। इसका प्रयोग ग्रीनहाउस की मृदा के खंडों या गमलों की मृदा को जीवाणु रहित करने के लिए किया जाता है। इसमें भापकी नली पहुँचाने के लिए एक प्रवेश द्वारा होता है। इसे चारों ओर से एकसा हुआ लकड़ी का खोल घेरे रहता है। इस खोल में मिट्टी भर कर लगभग 454 किग्रा० प्रतिवर्ग सेमी० दाब पर एक घंटा या अधिक समय तक भाप को छोड़ा जाता है।

मृदा का आतपन या सौरीयनः

मिट्टी में बैक्टीरिया, कीड़े और खरपतवार जैसे कीटों को नियंत्रित करने के लिए सूर्य के विकिरण का उपयोग करने के लिए मृदा सौरकरण पर्यावरण के अनुकूल तरीका है। मिट्टी के सौरीकरण से मिट्टी का तापमान 10–120 सेल्सियस बढ़ जाता है। मई–जून के महीने में मृदा सौरीकरण लागू

किया जाता है। इन महीनों में तापमान अधिक होता है। मृदा सौरीयन अथवा मृदा कि सौर चिकित्सा द्वारा अनेक मृदा जनित रोगजनक से उत्पन्न पादप रोगों जैसे अनेक फसलों की फ्यूजेरियम की जातियाँ एवं मूल विगलन स्क्लेरोटियम की जातियाँ, कपास, टमाटर, बैंगन आदि तथा अनेक सूत्रकृमि जैसे मूलगाँठ की जातियाँ आदि का सफलता पूर्वक नियन्त्रण किया जा सकता है या मृदा को फैलाकर 10 से 30 दिनों तक सौरतापन देने से रोगजनक मर जाते है। कुछ पादप जैसे बहुवर्षी या वार्षिक खरपतवारों जैसे एविना फैटुआ, लैक्टूका सोरघम आदि के नियंत्रण के लिए उपयोग में लाते है।

मृदा सौरीयन द्वारा खरपतवार नियंत्रण की संभावी क्रिया विधिया निम्न है:

(1) खरपतवार के बीजों की ऊष्मीय या तापीय मृत्यु होना।

(2) अंकुरण के लिए प्रेरित बीजों कई मृत्यु होना।

(3) बीज सुप्तावस्था का टूटना और इसके परिणाम में अंकुरित बीज की मृत्यु होना।

(4) दुर्बलता या अन्य क्रियाविधियों द्वारा जैविक नियन्त्रण आदि है।

मृदा में उत्तरजीवी प्रसुप्त कवकी तथा सूत्रकमियों का विनाश:

मृदा में कवक के उत्तर जीवी सुषुप्त प्रजनक का प्राकृतिक विनाश सामान्य रूप से मिलता है, जिसे विरोधी सूक्ष्मजीवों द्वारा अनेक क्रियाविधियाँ अपना कर किया जाता है। जैसे ट्राइकोडर्मा विराइड नामक कवक की परजीवी सक्रियता का प्रयोग मूल विगलन कवक राइजोक्टोनिया सोलानी के प्रयोग से नियंत्रण किया गया, उस समय से ही ट्राइकोडर्मा की जातियों ने न केवल मृदा जनित मूल रोगजनक को कुछ पर्णाय एवं फलों के रोगजनक के कवक विरोधी के रूप में सबसे अधिक ध्यान आकर्षित किया है।

मृदा में सूक्ष्मजीवों द्वारा पादप सूत्रकृमियों को नष्ट करने के अनेक उदाहरणों का उल्लेख किया है। जैसे अरेक श्लाइम्पेटियेन्स नामक अमीबा, मूल गाँठ सूत्रकृमिके सक्रिय डिम्भकों को अपने सूक्ष्म फिलोपोडिया से पकड़ कर उनका पूर्णतया अवशोषण करके खाली कर देता है। इसी प्रकार वैम्पायरेला, वोरैक्सएमियोडिया भी एक प्यूपा के संपूर्ण शरीर को पूर्ण रूप से घेर लेता है और आहार को पूर्ण करने के लिए 12–24 घंटे लेता है। कोलेम्बोला की कुछ जातिया संशोधित मृदा में मूल गाँठ मेल्वायडो गा. इननावानिका के अंडो का शीघ्रता से भक्षण करती है। मृदा में प्राकृतिक रूप से मिलने वाले रोगजनक पौधों के शत्रु उस मृदा में सक्रिय रहते हैं, जहाँ वह स्थापित हो चुके होते हैं।

साधारणतया विरोधी सूक्ष्मजीव के मृदा में मिलाये जाने वाले शुद्ध संवर्धन क्रिया करने में असफल रहते है। यह विरोधी सूक्ष्मजीव अपने स्वयं के विशिष्ट पारिस्थितिक गुण रखते हैं और अपने को केवल उन्हीं पर्यावरणों में स्थापित करते हैं। जहाँ के मूल निवासी माइक्रोफ्लोरा होते है। यदि वह किसी विशिष्ट मृदा के निवासी होते हैं, तो खेत में इनकी संख्या को उचित मृदा सुधारक पदार्थ द्वारा बढ़ाया जा सकता है।

मृदा सुधारक पदार्थ:

पौधों को पोषण प्रदान करने के कार्बनिक या जैव स्त्रोतों के अन्तर्गत कम्पोस्टखाद, हरीखाद तथा कुछ विशिष्ट कार्बनिक या जैव सुधारक पदार्थ जैसे खलियाँ, लकडी का बुरादा तथा हरी खाद एवं विशिष्ट कार्बनिक सुधारक पदार्थों को अपघटित रूप में प्रयोग किया जाता है। इनका अपघटन खेत की मृदा में होता है, जहाँ पर रोगजनक उत्तरजीवी होते है। इन कार्बनिक पदार्थों के अपघटन से मृदा के साथ–साथ मूल परिवेशी में विविध माइक्रोफ्लोरा की वृद्धि होती है और मृदा की भौतिक रासायनिक एवं जीवीय अवस्थाओं के परिवर्तन में सहायता मिलती है। इन जैव पदार्थों के अपघटन द्वारा मृदा गठन एवं संरचना में भी सुधार होता है और मृदा की उर्वरता बढ़ जाती है।

मृदा धूमक:

मृदा धूमक कीटनाशक होते हैं, जो मिट्टी पर लागू होने पर, मिट्टी में रहने वाले कीटों को नियंत्रित करने के लिए एक गैस बनाते हैं और पौधों की वृद्धि और फसल उत्पादन को बाधित कर सकते हैं। मृदा धूमक का उपयोग कई उच्च मूल्य वाली फसलों पर किया जाता है और नेमाटोड, कवक, बैक्टीरिया, कीड़े और खरपतवार सहित कीटों की एक विस्तृत श्रृंखला को नियंत्रित करने में उत्पादकों को लाभ प्रदान करते हैं। कुछ धूमक जैसे क्लोरो. पिक्रिन, मिथाइल ब्रोमाइड, डी. डी, आदि मृदा में प्रयोग करने से वाष्पीकृत हो जाते है। मृदा की आर्द्रता के सम्पर्क में आने पर इनका गैस के रूप में अपघटन होता है, जो मिट्टी के कण में फैल कर रोगजनक को मार देते है। यह रसायन अनाज बा.ने से पहले प्रयोग होने वाले धूमक होते हैं जो मृदा सूक्ष्मजीव जैसे अनेक कवक कुछ जीवाणु, कीटों एवं खरपतवारों के एक

विस्तृत परिसर के विरूद्ध बहुत प्रभावशील होते है।

फसल चक्र द्वारा:

मृदा कई बीमारी एक मुख्य समस्या है। जब एक खेत में एक ही फसल ली जाती है। तब उस फसल के मृदा जनित रोग. जनक भूमि मे सुगमता से चिर कालिक बने रहते है, जिससे उनकी संख्या में अधिक वृद्धि हो जाती है। कुछ समय पश्चात भूमि इतनी अधिक रोगग्रस्त हो जाती है। उसमें उस विशेष फसल की खेती करना कठिन हो जाता है। दूसरी ओर जब खेत में एक रोग ग्राही फसल लेने के बाद एक निश्चित अवधि के लिए प्रतिरक्षा, प्रतिरोधी अथवा परपोषी फसलों को उगाया जाता है।

उदाहरण मृदा जनित प्रकृति के रोगजनको द्वारा उत्पन्न ग्लानि एवं मूल विगलन रोगों की रोकथाम के लिए दालों के साथ फसल चक्र अपनाना चाहिए। धान की फसल के बाद में सब्जियां उगाना चाहिए, जिससे मृदा की उर्वरता बनी रहती है।

बोने के समय का चुनाव:

अनेक रोगों में रोग आपतन उस समय अधिक गंभीर हो जाती हैं, जब पौधों का विकास संवेदनशील अवस्था एवं रोगजनक के लिए अनुकूल अवस्थायें एक ही समय में एक साथ मिल जाती है। इस अनुरूपता को बुवाई के समय में परिवर्तन करके टाला जा सकता है और रोगजनक के लिए अनुकूल अवस्थाओं से फसल को बचाया जा सकता है। इस प्रकार से शीतऋतु में बोई गयी फसलें उच्च तापमान एवं आर्द्रता द्वारा अनुकूलित मूल विगलन एवं ग्लानि रोगों के आपतन से पलायन कर जाती है, जो प्रायः ग्रीष्म एवं वर्षाऋतु के बाद उत्पन्न होते है।

बीजों का चयन:

बीजों द्वारा खेत में संक्रमण फैलाने वाले पादप रोगों से बचाने के लिए अच्छी उचित गुणवत्ता के बीज का चयन करना चाहिए, जो खेत की मिट्टी में रोगजनक का गुणन रोकने एवं स्वस्थ फसल को संदूषित होने से बचाने के लिए आवश्यक होता है। रोग मुक्त बीजों को रोगजनक मुक्त मिट्टी में बोना चाहिए। यह प्रबंधन कि अत्यधिक प्रभावी विधि होती है। अच्छे स्वस्थ रोग मुक्त बीजों का चयन ही उचित होता है।

बीजों का उपचार:

बीजों के भीतर या उनकी सतह पर उप. स्थित रोगजनकों को हटाने के लिए ऊष्मा, गैस या रासायनिक उपचारों को किया जा सकता है। इस विधि को रोगजनकों के उन्मूलन एवं अपवर्जन के लिए किया जाता है। बीज उपचार खेत में बीज अंकुरण एवं रोग के विकास में होने वाली हानि को बहुत कम कर देते है। साधारणतः बीज उपचार आयात के लिए भी निर्धारित किए जाते हैं तथा निर्यात करने वाले अभिकरण को संगरोध उद्देश्य के लिए इस पर एक प्रमाण पत्र देना पड़ता है।

बीजों का प्रमाणीकरण:

जिन फसलों को केवल बीज के लिए उगाया जाता हैं। उनका समय–समय पर बीज द्वारा फैलने वाले रोगों की उपस्थिति के लिए निरीक्षण किया जाता है। यदि फसल पर कोई बीजजनित रोग उत्पन्न हो जाता है।

रोगजनक का उन्मूलन:

रोगजनक के उत्सरण या परिवर्जन तथा रोगजनक के अपवर्जन के सिद्धान्तों का मुख्य उद्देश्य खेत अथवा फसल में पहले से उपस्थित निवेश द्रव्य को हटाना ही होता है। रोगजनक का पूर्णउन्मूलन संभव नहीं है, परन्तु इसका उद्देश्य निवेश द्रव्य के घनत्व को एक ऐसे स्तर तक कम कर देना है। जहाँ यह एक सार्थक क्षति न पहुँचा सके। रोगजनक का उन्मूलन करने के लिए जैविक साधनों, फसलचक्र, रोगग्रस्त पौधों का उन्मूलन भौतिक एवं रासायनिक उपचार आदि प्रयास किए जाते है।

रोगजनकों का जैविक नियंत्रण:

जैविक नियंत्रण या जैव नियंत्रण अन्य जीवों का उपयोग करके कीटों, घुन, खरपतवार और पौधों की बीमारियों जैसे कीटों को नियंत्रित करने की एक विधि है। यह शिकार, परजीवीवाद, शाकाहारी या अन्य प्राकृतिक तंत्रों पर निर्भर करता है, लेकिन इसमें आमतौर पर एक सक्रिय मानव प्रबंधन भूमिका भी शामिल होती है। यह एकीकृत कीट प्रबंधन (आईपीएम) कार्यक्रमों का एक महत्वपूर्ण घटक हो सकता है। जो मृदा में अथवा पादप सतहों के संक्रमण स्थलों पर सूक्ष्मजीवी संख्या, गुणता एवं क्रिया को अत्यधिक बढ़ा देती है। रोगजनक के विरुद्ध सूक्ष्मजीवी के विरोधी अवयव का प्रभाव, बायोसाइडल अथवा बायोस्टैटिक हो सकता है। इसमें एक सूक्ष्मजीव दूसरे रोगजनक सूक्ष्मजीव को मार देता है। मृदा में कार्बनिक पदार्थों के विघटन से सूक्ष्मजीवी क्रियाओं को बढ़ावा मिलता है, परन्तु सूक्ष्मजीवों के कुछ सदस्य रोगजनक जीवों का दमन करते हैं एवं मार देते हैं।